

अथ

तर्कसंग्रहः

(तर्कदीपिकया समेतः)

निधाय हृदि विश्वेशं विधाय गुरुवन्दनम् ।

बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः ॥

हृदय में विश्वनाथ को रखकर गुरुवन्दना करके, बालकों के सुखपूर्वक बोध (अथवा मोक्षज्ञान) के लिये तर्कसंग्रह लिखा जाता है।

तर्कदीपिका

विश्वेश्वरं साम्बमूर्तिं प्रणिपत्य गिरं गुरुम् ।

टीकां शिशुहितां कुर्वे तर्कसंग्रहदीपिकाम् ॥

चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं शिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधित-
कर्तव्यताकमिष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मङ्गलं शिष्यशिक्षार्थं निबध्नं चिकीर्षितं
ग्रन्थादौ प्रतिजानीते—निधायेति ।

ननु मङ्गलस्य समाप्तिसाधनत्वं नास्ति; मङ्गले कृतेऽपि किरणावल्यादौ समा-
प्त्यदर्शनात्, मङ्गलाभावेऽपि कादम्बर्यादौ समाप्तदर्शनादन्वयव्यतिरेकव्यभि-
चारादिति चेत्,—न; किरणावल्यादौ विघ्नबाहुल्यात्समाप्त्यभावः । कादम्बर्यादौ
तु ग्रन्थादबहिरेव मङ्गलं कृतमतो न व्यभिचारः ॥

ननु मङ्गलस्य कर्तव्यत्वे किं प्रमाणमिति चेत्,—न; शिष्टाचारानुमितश्रुतेरेव
प्रमाणत्वात् । तथाहि—मङ्गलं वेदबोधितकर्तव्यताकम् अलौकिकाविगीतशिष्टा-
चारविषयत्वाद् दर्शादिवत् । भोजनादौ व्यभिचारवारणाय—अलौकिकेति ।
रात्रिश्राद्धादौ व्यभिचारवारणाय—अविगीतेति । ‘शिष्ट’पदं स्पष्टार्थम् । “न
कुर्यान्निष्फलं कर्म” इति जलताडनादेरपि निषिद्धत्वादिति ॥

तर्कसंग्रह इति । तर्क्यन्ते—प्रतिपाद्यन्त इति तर्का—द्रव्यादिसप्तपदार्थाः,
तेषां संग्रहः—संक्षेपेण स्वरूपकथनं क्रियत इत्यर्थः । कस्मै प्रयोजनायेत्यत आह—
सुखबोधायेति । सुखेनानायासेन बोधः—पदार्थज्ञानं तस्मा इत्यर्थः ॥ ननु बहुषु

तर्कग्रन्थेषु सत्सु किमर्थमपूर्वग्रन्थः क्रियत इत्यत आह—बालानामिति । तेषामतिविस्तृतत्वाद्बालानां बोधो न भवतीत्यर्थः । ग्रहणधारणपटुर्बालः, न तु स्तनन्धयः । किं कृत्वा क्रियत इत्यत आह—निधायेति । विश्वेशं=जगन्त्रियन्तारं शिवं हृदि निधाय=नितरां स्थापयित्वा, सर्वदा तद्ध्यानपरो भूत्वेत्यर्थः । गुरूणां=विद्यागुरूणां वन्दनं=नमस्कारं विधाय=कृत्वेत्यर्थः ॥

परम्परा का पालन करते हुए अन्नम्भट्ट अपने ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण से करते हैं ताकि वह निर्विघ्न समाप्त हो सके । मंगलाचरण से ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के सम्बन्ध में दो प्रमाण हैं—श्रुति और अनुमान । यद्यपि ऐसी श्रुति शब्दतः उपलब्ध नहीं होती जहाँ मंगलाचरण का आदेश दिया गया हो किन्तु शिष्टाचार द्वारा ऐसी श्रुति का अनुमान अवश्य किया जा सकता है । जैमिनि का कथन है कि जहाँ श्रुति शब्दशः कुछ न कहे और शिष्टाचार विषयता हो वहाँ उसका अनुमान लगा लेना चाहिये—असति ह्यनुमानम्^१ । तर्कदीपिका में मंगलाचरणसम्बन्धी श्रुति के अनुमान के सम्बन्ध में निम्न विवेचन किया गया हैः—मंगलाचरण श्रुतिसम्मत है, क्योंकि यह १. अलौकिक है, और २. अविगीत है । 'अलौकिक' का अभिप्राय यह है कि यह रागादि वश नहीं किया जाता और 'अविगीत' का अभिप्राय यह है कि श्रुति में इसका कहीं निषेध नहीं । भोजन आदि रागादि वश किये जाते हैं अतः ये अलौकिक नहीं और रात्रि-श्राद्ध आदि श्रुति-निषिद्ध हैं अतः वे अविगीत नहीं ।

दूसरा प्रमाण जो मंगलाचरण के पक्ष में दिया जाता है वह अनुमान का है । जिन ग्रन्थों का प्रारम्भ मंगलाचरणपूर्वक हुआ वे निर्विघ्न समाप्त हो गये अतः यह अनुमान किया जाता है कि मंगलाचरण से ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति होती है । यदि कहीं इसका अपवाद देखने में आये तो यह समझना चाहिए कि यदि मंगलाचरण होने पर भी ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्त नहीं हुआ तो वहाँ विघ्न अधिक थे, उदाहरणतः किरणावली । और यदि मंगल के अभाव में भी ग्रन्थ समाप्त हुआ देखने में आये तो यह समझना चाहिए कि वहाँ लेखक ने ग्रन्थ से बाहर ही मंगलाचरण कर लिया है, जैसे—कादम्बरी^२ ।

१. पूर्वमीमांसा, १.३३

२. यहाँ कादम्बरी का उदाहरण अनुचित है । प्रथम तो कादम्बरी के प्रारम्भ में विधिवत् मंगलाचरण किया ही गया है । दूसरे कादम्बरी की निर्विघ्न

इस मंगल श्लोक की दूसरी पंक्ति में अनुबन्ध-चतुष्टय (अर्थात् किसी भी ग्रन्थ के सम्बन्ध में अवश्य जातव्य चार विषय) बतलाये गये हैं। इस ग्रन्थ का अधिकारी 'बाल' अर्थात् वह है जो न तो सर्वथा शिशु है न सर्वथा प्रौढ है। सिद्धान्तचन्द्रोदय तथा पदकृत्य के अनुसार बाल का यह भी अर्थ संभव है कि जिसने व्याकरण आदि शास्त्र पढ़े हैं परन्तु न्यायशास्त्र नहीं पढ़ा—अधीतव्याकरणकाव्यकोशोऽनधीतन्यायशास्त्रः। 'सुखबोधाय' शब्द द्वारा इस ग्रन्थ का प्रयोजन दिया गया है। तर्क के विषय पर अनेक ग्रन्थ होने पर भी यह ग्रन्थ इसलिये लिखा गया कि विषय का बोध सुखपूर्वक हो सके। वाक्यविवृत्ति के अनुसार सुख अर्थात् मोक्ष का बोध इस ग्रन्थ का प्रयोजन है। तर्कसंग्रह शब्द विषय और सम्बन्ध दोनों को बतलाता है। तर्क अर्थात् जिनका विवेचन किया जाता है वे द्रव्यादि सप्त पदार्थ—तर्क्यन्ते प्रतिपाद्यन्त इति तर्काः द्रव्यादिसप्तपदार्थाः। न्याय में 'तर्क' के अनेक अर्थ दिये हैं पर जो अर्थ यहां किया है वह एक दृष्टि से असाधारण ही है। 'संग्रह' शब्द यहां संक्षेप के अर्थ में आया है। वाक्यविवृत्ति के अनुसार संग्रह के अन्तर्गत (१) उद्देश्य (२) लक्षण और (३) परीक्षा आते हैं। उद्देश्य का अर्थ है परिगणन

समाप्ति भी नहीं हुई। इसी प्रकार किरणावली में मंगलाचरण भी है और यह समाप्त भी नहीं हुई। (यह सम्भव है कि किरणावली किसी समय पूर्ण प्राप्त होती हो।) कुछ प्रतिलिपियों में किरणावली के स्थान पर कादम्बरी तथा कादम्बरी के स्थान पर किरणावली पाठ दिया है। इस पाठ के मानने पर कादम्बरी की समस्या तो हल हो जाती है किन्तु किरणावली की समस्या बनी ही रहती है। सिद्धान्तचन्द्रोदय में किरणावली के भी स्थान पर 'नास्तिक ग्रन्थादौ' पाठ मान कर यह समस्या हल की गई है।

१. सुखं दुःखध्वंसः मोक्ष इति यावत्। सुखाय बोधः सुखबोधः—वाक्यविवृत्ति। वाक्यविवृत्ति में मेरुशास्त्री ने सुखबोधाय का जो अर्थ स्वयं अन्तम्भट्ट ने किया है, उसका भी खण्डन कर दिया है—“अन्तम्भट्टस्तु—सुखेनानायासेन बोधः सुखबोध इति व्याचष्ट। तच्च किञ्चिदपकर्षमालम्बते। स्वतः परमपुरुषार्थभूतमोक्षं प्रति स्वग्रन्थस्योपयोगितामप्रत्याय्य ग्रन्थादौ बालकस्य प्रवर्तयितुमशक्यत्वात्।”

२. नामधेयेन पदार्थमात्रस्याभिधानमुद्देशः। उद्दिष्टस्य तत्त्वव्यवच्छेदको धर्मो लक्षणम्। लक्षितस्य यथा लक्षणमुपपद्यते न वेति प्रमाणैरवधारणं परीक्षा—वात्स्यायनभाष्य, न्यायसूत्र, १.१.२.

जैसा कि—द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः । लक्षण का उदाहरण है—गन्धवती पृथिवी । परीक्षा में उस लक्षण का विवेचन किया जाता है ।

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्त पदार्थाः ।

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, और अभाव-ये सात पदार्थ हैं ।

(त. दी.) पदार्थान्विभजते—द्रव्येति । ‘पदस्यार्थः=पदार्थः’ इति व्युत्पत्त्याभिधेयत्वं पदार्थसामान्यलक्षणम् ॥ नन्वत्र विभागादेव सप्तत्वे सिद्धे ‘सप्त’ ग्रहणं व्यर्थमिति चेत्—न; अधिकसंख्याव्यवच्छेदार्थत्वात् ॥ नन्वतिरिक्तः पदार्थः प्रमितो न वा? । नाद्यः; प्रमितस्य निषेधायोगात् । नान्त्यः; प्रतियोगिप्रमितिं विना निषेधानुपपत्तेरिति चेत्,—न; पदार्थत्वं द्रव्यादिसप्तान्यतमत्वव्याप्यमिति व्यवच्छेदार्थत्वात् ॥ ननु सप्तान्यतमत्वं सप्तभिन्नभिन्नत्वमिति वक्तव्यम् । एवं च सप्तभिन्नस्याप्रसिद्धत्वात्सप्तान्यतमत्वं कथम्? इति चेत्,—न; द्रव्यादिसप्तान्यतमत्वं द्रव्यादिभेदसप्तकाभाववत्त्वमित्युक्तत्वात् । एवमग्रेऽपि द्रष्टव्यम् ॥

दीपिका में पदार्थ का अर्थ उसकी व्युत्पत्ति पर आधारित है । पद का अर्थ पदार्थ है—पदस्य अर्थः । इसे ही दूसरे शब्दों में कह सकते हैं—अभिधेयत्वं पदार्थसामान्यलक्षणम् । अर्थ उसे कहते हैं जिसके प्रति इन्द्रियाँ गतिशील होती हैं—ऋच्छन्तीन्द्रियाणि यं सः । सिद्धान्तचन्द्रोदय में पदार्थ को ‘ज्ञेयत्व’ द्वारा और सप्तपदार्थों में ‘प्रमितिविषयत्व’ द्वारा कहा गया है ।^१ वस्तुतः जो पदार्थ ज्ञेय होगा वह अभिधेय भी होगा ही ।

अरस्तु ने अपने तर्कशास्त्र में दस पदार्थ माने हैं १. वस्तु, २. परिमाण, ३. गुण, ४. सम्बन्ध, ५. स्थान, ६. काल, ७. स्थिति, ८. विशिष्टता, ९. गति, १०. निष्क्रियता । इनमें अन्तिम नौ विधेय हैं और प्रथम वस्तु उद्देश्य है । किन्तु इन सभी के लिये एक ही शब्द कैटेगोरी (Category) का प्रयोग किया गया है । यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि अरस्तू का विभाजन तर्कसंगत है जबकि कणाद का तात्त्विक । वैशेषिक दर्शन द्वारा बताये गये ७ पदार्थ और अरस्तू द्वारा बनाये गये १० पदार्थों की तुलना की जा सकती है । द्रव्य और

गुण तो वस्तु और गुण हैं ही, संयोग और समवाय दोनों सम्बन्ध हैं जिनमें प्रथम गुण है और दूसरा विशेष प्रकार का पदार्थ। समय और स्थान की गणना द्रव्यों में की गई है। गति कर्म है और निष्क्रियता उसका निषेध है। विशिष्टता सामान्य या विशेष है जिसको बाद के नैयायिकों ने उपाधि माना। स्थिति का कोई विशेष स्थान वैशेषिक दर्शन में नहीं। अरस्तू ने अभाव का उल्लेख नहीं किया क्योंकि वह सत्तावान् पदार्थों की गणना कर रहा था।^१

हम देखते हैं कि सभी दर्शनकारों ने पदार्थों की भिन्न-भिन्न संख्या मानी है। गौतम ने १६ पदार्थ माने,^२ वेदान्तियों ने चित् और अचित् दो पदार्थ माने, रामानुज ने उनमें एक ईश्वर और जोड़ दिया। सांख्यदर्शन में २५ तत्त्व हैं^३ और मीमांसकों में ८^४। वस्तुतः इन सभी दर्शनों में 'पदार्थ' शब्द का प्रयोग किसी एक विशिष्ट अर्थ में नहीं किया गया, प्रत्युत उन सभी विषयों का, जिनका विवेचन तत्त्व दर्शनों में है, पदार्थ नाम दे दिया गया।

दीपिका में यहां इस विषय का भी विवेचन है कि यहां सप्त शब्द का प्रयोग क्यों किया गया। इस पर उत्तर दिया गया कि यहां सप्त का ग्रहण अधिक पदार्थों की सम्भावना का निषेध करने के लिये है। वस्तुतः वैशेषिक दर्शन में छः और गौतम दर्शन में १६ पदार्थ थे। कणाद के बतलाये गये छः पदार्थों में परवर्ती टीकाकारों ने अभाव और जोड़ दिया^५। दीपिका में अन्त में गौतम द्वारा दिये गये १६ पदार्थों का भी सप्त पदार्थों में ही अन्तर्भाव किया गया है। उसका वर्णन हम आगे करेंगे। यहाँ न्यायबोधिनी टीका में यह शका उठाई गई है कि शक्ति को भी अष्टम पदार्थ क्यों न मान लिया जाये। मणि विशेष के रहने पर ईधन के पास अग्नि रखने पर भी दाह नहीं

१. तुलनीय, तर्कसंग्रह, अथल्ये तथा बोझास, पृ ७३-७४

२. प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहे-
त्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्तिःश्रेयसाधिगमः

—न्यायसूत्र, १.१.१.

३. सांख्यकारिका, ३.

४. तन्त्ररहस्य, पृ० २०-२४ बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन, पृ० ३८८ पर उद्धृत

५. कणाद ने अपने सूत्रों में अभाव शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है। तुलनीय—'कारणाभावात् कार्याभावः' तथा 'न तु कार्याभावात् कारणाभावः'—वैशेषिकदर्शन, १.१.१३ तथा १.१.१४.

होता और मणि न होने पर दाहानुकूल शक्ति उत्पन्न हो जाती है अतः शक्ति भी एक अष्टम पदार्थ है। इसका उत्तर यह है कि मणि का अभाव ही दाह का कारण है और यदि मणि के संयोग और वियोग को पदार्थ मानें, तो अनन्त शक्तियों की कल्पना करनी पड़ेगी। इसलिये पदार्थ सात ही हैं।

तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव ॥

उन (पदार्थों) में पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन-ये नौ ही द्रव्य हैं।

(त. दी.) द्रव्यं विभजते—तत्रेति । तत्र द्रव्यादिमध्ये द्रव्याणि नवैवेत्य-
न्वयः । कानि तानीत्यत आह—पृथिवीत्यादि । ननु तमसो दशमद्रव्यस्य विद्यमान-
त्वात्कथं नवैव द्रव्याणि ? । तथाहि—‘नीलं तमश्चलति’ इत्यबाधितप्रतीतिबला-
ग्नीलरूपाधारतया क्रियाधारतया च द्रव्यत्वं तावत्सिद्धम् । तत्र तमसो नाकाशा-
दिपञ्चकेऽन्तर्भावः; रूपवत्त्वात् । अत एव न वायौ; स्पर्शभावात् सदागतिम-
त्त्वाभावाच्च । नापि तेजसि; भास्वररूपाभावादुष्णस्पर्शभावाच्च । नापि जले;
शीतस्पर्शभावाग्नीलरूपाश्रयत्वाच्च । नापि पृथिव्याम्; गन्धवत्त्वाभावात् स्पर्श-
रहितत्वाच्च । तस्मात्तमो दशमद्रव्यमिति चेत्,—न; तमस्तेजोऽभावरूपत्वात् ।
तथाहि—तमो हि न रूपवद्द्रव्यमालोकासहकृतचक्षुर्ग्राह्यत्वादालोकाभाववत् ।
रूपिद्रव्यचाक्षुषप्रमायामालोकस्य कारणत्वात् । तस्मात्प्रौढप्रकाशकतेजःसामान्या-
भावस्तमः । तत्र ‘नीलं तमश्चलति’ इति प्रत्ययो भ्रमः । अतो नव द्रव्याणीति
सिद्धम् ॥

द्रव्य के चार लक्षण किये जा सकते हैं—१. द्रव्यत्वजातिमत्त्वम्, २. गुणवत्त्वम्, ३. क्रियावत्त्वम् ४. समवायिकारणत्वम् । किन्तु इनमें अन्तिम को छोड़कर सभी सदोष हैं। प्रथम लक्षण में तो केवल शाब्दिक परिभाषा है क्योंकि उससे द्रव्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। सिद्धांतचन्द्रोदय में द्रव्यत्व जाति की सत्ता सिद्ध की गई है और उसकी यह प्रक्रिया दी गई है—द्रव्यवृत्तिर्या समवायिकारणता सा किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना, कारणतात्वाद्दण्डवृत्तिकारणतावत् । अर्थात् प्रत्येक कारणता में कुछ धर्मावच्छिन्नता रहती है जैसे दण्डनिष्ठकारणता में दण्डत्वावच्छिन्नता । उसी प्रकार जो द्रव्य में रहने वाली समवायिकारणता है वह भी किसी धर्म से अवच्छिन्न है। किन्तु इस परिभाषा के अनुसार दो

मान्यताएं माननी पड़ती हैं। प्रथम तो यह कि द्रव्य एक कारण है और दूसरे यह कि कारण का कोई धर्म होना चाहिए। दूसरी परिभाषा 'गुणवत्त्व' यद्यपि अधिक उपयुक्त है किन्तु इसके अनुसार द्रव्य जिस क्षण उत्पन्न होगा, उस क्षण वह निर्गुण होने के कारण द्रव्य नहीं हो सकेगा क्योंकि नैयायिकों के अनुसार उत्पन्न होते समय द्रव्य निर्गुण होता है—आद्ये क्षणे निर्गुणं द्रव्यं तिष्ठति। अतः इस परिभाषा में अव्याप्ति दोष आ जाता है। इस दोष का निवारण यह कहकर दिया जाता है कि 'गुणसमानाधिकरण-सत्ताभिन्न-जातिमत्त्वं द्रव्यत्वम्'। अर्थात् यद्यपि प्रथम क्षण में द्रव्य गुण नहीं होते किन्तु उनमें द्रव्यत्व जाति अवश्य होती है। क्योंकि सत्ता भी एक जाति है जिसमें गुण रहते हैं, अतः उसमें अतिव्याप्ति का निवारण करने के लिए यहां 'सत्ताभिन्न' पद का निवेश किया गया है। किन्तु इस स्थिति में यह परिभाषा लगभग प्रथम परिभाषा जैसी ही हो जाती है। तीसरी परिभाषा—समवायिकारणत्व शुद्ध होने पर भी बहुत अधिक पारिभाषिक है।

प्रस्तुत प्रसंग में दीपिका और न्यायबोधिनी दोनों टीकाओं में यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या तमस् दसवां द्रव्य नहीं है? द्रव्य में गुण और क्रिया आवश्यक मानी गई हैं। ये दोनों तमस् में हैं क्योंकि 'नील तम चलता है'—यहां नील गुण और गति क्रिया दोनों का आश्रय तमस् को माना है। तमस् का रूप है अतः यह अन्तिम पांच (आकाश, काल, दिक्, गुण, आत्मा और मन) में तो अन्तर्भूत नहीं हो सकता क्योंकि ये पांचों तो रूप रहित हैं। इसी कारण तमस् वायु भी नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त तमस् में स्पर्श भी नहीं है और न निरन्तर गति ही है इसलिए भी उसका वायु में अन्तर्भाव नहीं हो सकता। क्योंकि इसका रूप भास्वर नहीं है और न इसका स्पर्श उष्ण है, अतः यह तेज भी नहीं हो सकता। इसका वर्ण नील है और इसका स्पर्श शीत भी नहीं है, अतः यह जल भी नहीं हो सकता। इसमें न गन्ध है न स्पर्श, अतः यह पृथ्वी के अन्तर्गत भी समाविष्ट नहीं होता। अतः तमस् को दसवां द्रव्य मानना ही चाहिये। किन्तु सिद्धांत पक्ष यह है कि तमस् केवल तेज का अभाव है, स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है। यदि इसे दसवां द्रव्य मानें तो या तो यह रूपवान् होगा या रूपरहित। नीला प्रतीत होने के कारण यह रूप रहित तो माना नहीं जा सकता और इसे रूपवान् भी नहीं मान सकते क्योंकि रूपवान् को देखने के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है जबकि तमस् को देखने के लिए किसी प्रकार के प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। अतः तमस् को 'प्रौढप्रकाशतेजःसामान्याभावः' कहा है। यहां 'सामान्य' शब्द से यह माना

गया है कि किसी भी प्रकार के तेज का अभाव अभिप्रेत है न कि किसी सूर्यचन्द्रादिक के तेज विशेष का । 'प्रकाशक' शब्द यहां इसलिए रखा गया कि यद्यपि स्वर्ण तेजस् है किन्तु प्रकाशक नहीं है अतः स्वर्ण के होने पर भी तमस् का होना सम्भव है । 'प्रौढ' का तात्पर्य यह है कि सूक्ष्म प्रकाश से अन्धकार दूर नहीं होता । दीपिका में अन्धकार में नील वर्ण और गति की प्रतीति को भ्रान्ति माना है । श्रीधर ने न्यायकन्दली में अन्धकार को किसी पदार्थान्तर पर नीलवर्ण का आरोप मात्र माना है और इस प्रकार इसे अभाव न मान कर एक गुण तो माना है किन्तु द्रव्य नहीं^१ । प्राभाकर मीमांसकों में से कुछ इसे तेज के ज्ञान का अभाव मानते हैं तेज का अभाव नहीं^२ । न्यायबोधिनी में यह भी चर्चा की गई है कि तेज को ही अन्धकार का अभाव क्यों न मान लिया जाए । किन्तु उसके उत्तर में यह कहा गया कि उष्ण स्पर्श का आश्रय होने के कारण तेज को अभाव रूप नहीं माना जा सकता । अन्धकार में नील रूप की प्रतीति दीपक के अपसरण की क्रिया के कारण होने वाली भ्रान्ति ही है ।

दीपिका में यहां द्रव्य का लक्षण करते समय लक्षण के तीन दोषों की भी चर्चा की गई है । लक्षण को असाधारण धर्मयुक्त होना चाहिए । असाधारण की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—लक्ष्यतावच्छेदकसमनियतत्वमसाधारणत्वम् । लक्षण को तीन दोषों से रहित होना चाहिए—१. अव्याप्ति अर्थात् ऐसे धर्म जो लक्ष्य पदार्थ के एक अंश में रहें जैसे—गौ का 'कपिलत्व' । २. अतिव्याप्ति जो लक्ष्य से अतिरिक्त पदार्थों में भी रहें जैसे गौ का 'शृंगित्व' । ३. असम्भव जो किसी भी लक्ष्य में न रहें जैसे गौ का 'एकशफवत्व' । इस विवेचन में हमें यह पता चलेगा कि भारतीय तार्किक किसी पदार्थ का लक्षण करते समय उसके सब अनिवार्य धर्मों का परिगणन आवश्यक नहीं मानते थे; प्रत्युत केवल ऐसे धर्मों का निर्देश ही पर्याप्त समझते थे जो लक्ष्य को इतर पदार्थों से विविक्त कर दें । इस कारण कई स्थानों पर लक्षण केवल कुछ गुणों का परिगणन या वर्णनमात्र रह गए हैं ।

१. प्रशस्तपादभाष्य, न्यायकन्दली, पृ. २१-२६. इन पृष्ठों में तमस् के दशम द्रव्यत्व के सम्बन्ध में कुछ मौलिक चर्चा की गयी जो है विस्तारभय से उद्धृत नहीं की गयी; श्री दुर्गाधरशा शर्मा ने उस चर्चा का सुन्दर हिन्दी-रूपान्तर भी नीचे दिया है ।

२. सर्वदर्शनसंग्रह, पृ. १०८.

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरु-
त्वद्रवत्वस्नेहशब्दबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्मधर्मसंस्काराश्चतुर्विंश-
तिगुणाः ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, और संस्कार—ये चौबीस गुण हैं ।

(त. दी.) गुणं विभजते—रूपेति । द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान् गुणः । गुणत्वजातिमान्वा । ननु लघुत्वमृदुत्वकठिन्त्वादीनां विद्यमानत्वात्कथं चतुर्विंशतिगुणाः ? इति चेत्, न; लघुत्वस्य गुरुत्वाभावरूपत्वात्, मृदुत्व-कठिन्-त्वयोरवयवसंयोगविशेषरूपत्वात् ॥

दीपिका में गुण की परिभाषा गुणत्वजातिमान् भी है, जोकि द्रव्य की प्रथम परिभाषा के समान केवल शाब्दिक परिभाषा मात्र है । गुण की दूसरी परिभाषा है—द्रव्यकर्मभिन्नत्वे सति सामान्यवान् । नैयायिकों के अनुसार सामान्य अथवा जाति द्रव्य, गुण और कर्म में रहती है । अतः ऐसे सामान्यवान् पदार्थ को गुण कहा जा सकता है जो न द्रव्य हो न कर्म । इसे ही दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कहा जाता है—द्रव्यावृत्ति-नित्यवृत्ति-जातिमान् । अर्थात् जो न द्रव्य है और न अनित्य और जातिमान् भी है वह गुण है । यहां 'नित्य' शब्द से कर्म का निराकरण हो जाता है । भाषापरिच्छेद में गुण की परिभाषा अधिक पूर्ण दी है—अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निष्क्रिया गुणाः ।^१ अर्थात् गुण द्रव्य में रहते हैं किन्तु स्वयं गुण और क्रिया रहित होते हैं । कणाद ने गुण की जो परिभाषा दी है वह इससे बहुत मिलती-जुलती है—द्रव्याश्रयी न गुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ।^२ यहां 'संयोगविभागेष्वकारणम्' पद द्वारा कर्म में अतिव्याप्ति का निवारण हो जाता है, क्योंकि कर्म संयोग और विभाग में कारण है ।

उपर्युक्त परिभाषाओं पर ध्यान दें तो यह पता चलेगा कि वास्तविक समस्या गुण को द्रव्य और कर्म से भिन्न करने की है । द्रव्य अधिकरण है, गुण और कर्म दोनों ही उसके आश्रित हैं । बोडास का मत है कि गुण स्थायी है, कर्म अस्थायी ।

१. भाषापरिच्छेद, ८६ ।

२. वैशेषिक दर्शन, १. १. १६.

जब तक प्रक्रिया चलती है तब तक कर्म कहलाता है किन्तु जब प्रक्रिया स्थिर हो जाती है तो यह गुण कहलाता है। उदाहरणतः वाहन की गति कर्म है क्योंकि वह किसी भी क्षण रुक सकती है किन्तु पृथ्वी और नक्षत्रों की गति गुण है क्योंकि वह उनका स्थायी स्वभाव है। किन्तु बोडास का यह विवेचन शास्त्रसम्मत नहीं है।

ऊपर जो २४ गुण दिये हैं उनका आधार कोई गम्भीर विवेचन नहीं प्रतीत होता। किसी पदार्थ के स्वरूप का तात्त्विक विवेचन करके गुणों का परिगणन भारतीय तार्किकों ने सम्भवतः नहीं किया। कणाद ने १७ गुण गिनाये हैं—रूपरसगन्धस्पर्शसंख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागी परत्वापरत्वे बुद्ध्यः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्च गुणाः।^१ टीकाकारों ने 'च' शब्द का सहारा लेकर इसमें ७ गुण और जोड़ दिये—गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द।^२ शंकर मिश्र ने यह कहकर इसकी व्याख्या की है कि क्योंकि ये सात गुण सर्वविदित हैं अतः सूत्रकार ने उन्हें नहीं गिनाया।^३ स्पष्ट है कि यह व्याख्या अधूरी है। १७ की अपेक्षा २४ गुण संभवतः सर्व-प्रथम प्रशस्तपाद ने गिनाये। नव्यन्याय में केवल २१ गुण ही माने जाते हैं। नव्यनैयायिक 'परत्व' 'अपरत्व' को 'त्रिप्रकृष्टत्व' और 'संनिष्कृष्टत्व' या 'ज्येष्ठत्व' और 'कनिष्ठत्व' में अन्तर्निहित मान लेते हैं और पृथक्त्व को अन्योन्याभाव का ही एक रूप मानते हैं।

कुछ टीकाकारों ने गुणों की संख्या बढ़ाने का प्रयत्न भी किया है। दीपिका में लघुत्व, मृदुत्व और कठिनत्व को तथा सिद्धान्तचन्द्रोदय में आलस्य को पृथक् गुण गिनाया है। किन्तु यह कहा जाता है कि लघुत्व केवल गुरुत्व का अभाव है और मृदुत्व तथा कठिनत्व संयोग की सघनता की क्रमिकता पर आश्रित हैं। आलस्य प्रयत्न का विरोधी है किन्तु यदि इसी आधार पर यह कहा जाये कि अधर्म भी तो धर्म का विरोधी है तो यह उत्तर दिया गया है कि अधर्म केवल धर्म का अभाव ही नहीं है प्रत्युत

१. वैशेषिकदर्शन, १. १. ५।

२. 'च' शब्दसमुच्चिताश्च गुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारादृष्टशब्दाः सप्तैवेत्येवं चतुर्विंशतिगुणाः—प्रशस्तपादभाष्य, पृ. २७.

३. उपस्कारभाष्य वैशेषिक दर्शन, १. १. ६. (पृ. १४) ते हि प्रसिद्ध-गुणभावा एवेति कण्ठतो नोक्ताः।